कहाँ हो मुमताज ?

दिनेश कर्नाटक

कहाँ हो मुमताज?

राजन वर्षों बाद उस से मिलने आया था। उसका चेहरा, उसकी आँखें और उमंग से भरी आवाज, उसकी खुशी को बयान कर रहे थे। गाँव से जाने के बाद वह एक बार पहले भी उससे मिलने आया था। पुराने दिनों की बात चल पड़ी और कुछ ही देर में, वह भी उसके साथ उन बीते दिनों में दाखिल हो गया था। कुछ समय तक श्वेत-श्याम और धुंधले नजर आ रहे दृश्य, धीरे-धीरे अपने रंग में नजर आने लगे थे।

'तुझे याद है, एक नीता थी!' राजन ने उमगते हुए कहा था।

'उसे कैसे भूल सकता हूँ?' उस ने जवाब दिया और दिमाग पर जोर डालकर उसका चेहरा याद करने लगा।

'मुमताज से कभी... मिलना हुआ!' उसने हिचकिचाते हुए पूछा।

'मुमताज...!' एक लंबा निश्वास छोड़कर वह चुप हो गया। 'उम्मीद तो हमेशा बनी रही कि कभी कहीं पर मुलाकात जरूर होगी... लेकिन ऐसा आज तक हुआ नहीं!' कुछ देर बाद उस ने कहा।

इसके बाद कोई घंटे भर तक दोनों साथ बैठे रहे और एक साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच आवा-जाही करते रहे। राजन के जाने के बाद भी उसका मन तूफान में फँसे पंछी की तरह जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा। फिर जीवंत दृष्यों की एक पूरी श्रृंखला आँखों के आगे बहने लगी थी।

मास्साब की कड़कती आवाज को याद कर उन्हीं दिनों की तरह तन-मन सिंहर उठा था।

'नीता, उसके जोर से थप्पड़ मार!' मास्साब ने गुस्से से कुलबुलाते हुए कहा था।

नीता ने वैसा ही किया था। तिलमिला कर रहा गया था वह!

'साली! मैंने तूझे कब पत्थर मारा?' इसी तिलमिलाहट में उसने उसके ऊपर प्रश्न उछाल मारा था।

'मास्साब, ये गाली दे रहा है!' वह फिर से चिल्लाई थी।

'मैंने इसे पत्थर नहीं मारा है, मास्साब... आप इन लोगों से पूछ लो!' उसने साथ बैठे हुए लड़कों की ओर इशारा किया। उसे उम्मीद थी, तुरंत कोई उठकर सच बता देगा। वह आशा से उनकी ओर देखने लगा, लेकिन कोई नहीं उठा था।

'गाली दे रहा है! एक और लगा!' मास्साब फिर से दहाड़े थे।

नीता फिर से उसकी ओर बढ़ने लगी थी। बचने का कोई रास्ता नहीं था। वह मन ही मन कामना कर रहा था, 'कम से कम इस बार नीता थप्पड़ मारने में कुछ तो मुरव्वत बरत दे!' पर उसके प्रहार की तीव्रता में कोई अंतर नहीं आया था।

उसकी रुलाई फूट पड़ी थी। जो काम उसने नहीं किया, उसे उसकी सजा मिली थी। उसे जबरन अपराधी बना दिया गया था, जो उसे बिल्कुल सहन नहीं हो रहा था। वह मास्साब के बैठने के आदेश के बावजूद खड़ा रहा। यह उनके अन्याय के प्रति विरोध दर्ज करने का उसका अपना तरीका था। इतना ही नहीं वह गुस्से और अपमान से भरकर जोर-जोर से रोने लगा था। मास्साब और बहनजी हतप्रभ थे।

तभी उससे कुछ दूरी पर अकेले बैठे रहने वाला, कक्षा में नया-नया आया लड़का, जिससे अभी तक उसकी अच्छे से जान-पहचान भी नहीं हुई थी, शायद यह सब बर्दाश्त नहीं कर पाया और झटके से उठा 'गुरूजी, पत्थर इसने नहीं मारा... ये लोग अपना काम कर रहे थे।' उसने उसकी चैकड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा।

उसके यह कहते ही उसके साथ खेल रहे लड़के भी उसके पक्ष में खड़े हो गए।

उसकी जान में जान आई। उसने मन ही मन उसे अनेकों धन्यवाद दिए। कोई तो है, जिसमें सच कहने और दूसरों से बुराई मोल लेने की हिम्मत है। सब के सामने दोष मुक्त होने पर उसे काफी सुकून मिला था। उस पल से वह नया लड़का उसका दोस्त हो गया था।

उन दिनों अमेरिका से खैरात में आया हुआ दलिया इंटरवल में पकाया जाता था।

सभी लड़के साथ बैठकर और मिल-जुलकर खाते थे, जबकि वह लड़का अकेले ही खाया करता था। इस बार जब उनकी काम करने की बारी साथ-साथ आई तो उसने खाने के समय उसे अपने साथ ले लिया। दोनों ने बड़े से डेक के ढक्कन में साथ खाया। कोई और उनके साथ सम्मिलित नहीं हुआ।

बाद में बर्तन धोते समय एक लड़के ने उस से कहा, 'तूने मुमताज के साथ क्यों खाया... तेरे को पता नहीं है, उसके साथ नहीं खाते हैं! तेरी ईजा को पता चलेगा तो वो तुझे मारेगी?'

उसे उसकी बात सुनकर झटका सा लगा। समझ में नहीं आया कि वह ऐसा क्यों कह रहा है? एक बर्तन में साथ-साथ दलिया खाने में उससे ऐसा क्या अपराध हो गया कि उसे, उससे ऐसा कहना पड़ा। फिर उसे लगा कोई बात तो जरूर है जिसके कारण और लड़के मुमताज के साथ नहीं खाते हैं। वह क्या वजह है? यह वजह उसे क्यों नहीं पता है? कहीं मुमताज को कोई बीमारी तो नहीं है?

वह बेवकूफों की तरह उस लड़के की ओर देखने लगा, ताकि वह उसे असल बात बता दे। जबकि वह उसकी मजाक उड़ाने लगा। उन दिनों वह एकदम चिढ़ जाया करता था। वह गुस्से से तमतमा उठा। उसने उस पर पत्थरों से हमला कर दिया।

'तूने मुमताज के साथ खा लिया। सब तेरी मजाक उड़ाएगे!' चटाई में बैठते ही एक और लड़के ने उस से कहा।

'तो क्या हुआ?'

'तुझे पता नहीं सुरिया लोगों की तरह मुसलमानों का छुआ भी नहीं खाते!'

वह चौक गया। 'क्या मतलब!' ऐसा तो उसकी माँ ने कभी उसे नहीं बताया? 'तुझे कैसे मालूम?'

'ईजा ने बताया कि वो लोग भैंस का मीट खाते हैं!'

'भैंस का मीट... क्या लोग भैंस का भी मीट खाते हैं? मैंने तो यहाँ कहीं कटते हुए नहीं देखा?'

'ये लोग खाते हैं... शहर में कटता है... वहाँ से लाते हैं!'

'मैं मुमताज से पता करूँगा?' उसने कहा।

'ऐसा मत करना वो तुझे मारेगा! ईजा कह रही थी, ये लोग बहुत खतरनाक होते हैं। भैंस और बकरी की गरदन को धीरे-धीरे पश्या कर (हलाल कर) काटते हैं!'

अब उसकी समझ में आ रहा था कि क्यों सभी लड़के उसकी ओर अजीब नजरों से देख रहे थे। कितनी बाते हैं, जो अभी उसे मालूम नहीं है? लेकिन मुमताज के साथ खाने में क्या बुराई है। वह अच्छा लड़का है। अच्छी बातें करता है। उसके लेख कितने अच्छे हैं! अपना काम हमेशा पूरा रखता है। मास्साब भी उसकी तारीफ करते हैं। उसकी कापी सब को दिखाते हैं। वह दूसरे लड़कों की तरह किसी से लड़ता भी नहीं। काटते होंगे भैंस... वह तो नहीं काटता...! मुझे उसका साथ अच्छा लगता है। मैं उसके साथ खाऊँगा! चाहे कुछ भी हो जाए! फिर उस दिन मेरी गलती न होते हुए भी मेरा साथ देने वही तो आगे आया था!'

मौका मिलते ही उसने लड़कों की कही सारी बातें मुमताज से पूछी थी। मुमताज ने बगैर परेशान हुए सभी बातों का उत्तर दिया था। उसने कहा, खाते हैं कुछ लोग, पर वे

नहीं खाते। उन्हें भी हमारी तरह बकरे का मीट अच्छा लगता है। उसने कहा अम्मी कहती है भैंस का मीट सस्ता आता है। जैसे कुछ हिंदू लोग सूअर का सस्ता मीट खाते हैं, वैसे ही कुछ मुसलमान लोग भी भैंस का मीट खाते हैं।

'कैसे खा लेते होंगे... उन्हें घृणा नहीं आती होगी... फिर वो खतरनाक नहीं हो जाते होंगे!' उसने मासूमियत से उससे पूछा तो वह हँस दिया और किसी बड़े आदमी की तरह उसे समझाने लगा।

'क्या बकरी का मीट खाकर तू खतरनाक हो गया है? ऐसा कुछ नहीं होता। अम्मी कहती है, ये सब हमारी अलग-अलग सोच का नतीजा है। सूअर गंदगी में पड़ा रहता है... फिर भी कुछ ईसाई और हिंदू लोग उन्हें खाते हैं। इससे वे लोग गंदे थोड़ा हो गए। अम्मी कहती है, सबका जीने का अपना-अपना तरीका है।'

'यार मुमताज, ऐसा ही कुछ कभी-कभी मैं भी सोचता हूँ। तेरी अम्मी तो बड़ी अच्छी बातें करती है।'

'किसी दिन घर चलकर उनसे मिल लेना!'

इसके बाद दोनों को एक-दूसरे से मिलना अच्छा लगने लगा। साथ स्कूल आते... साथ खेलते। न मिलने पर उदास हो जाते। दुनिया जहान की बातें करते। मुमताज को रेडियो सुनने का खूब शौक था। वह उसे रेडियो में सुनी हुई कई नई बातें बताया करता था। उसे लगता, मुमताज और उसकी अम्मी रेडियो से ही इतनी अच्छी-अच्छी बातें जान पाते होंगे। शाम के समय गाँव के रामलीला मैदान में कबड्डी खेलते हुए उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं रहती थी। जाड़ों के दिनों में बड़ों के द्वारा खेला जाने वाला बालीबाल का खेल उन्हें इतना अच्छा लगता कि अँधेरा होने तक वहीं डटे रहते थे। धीरे-धीरे क्रिकेट का खेल भी लोकप्रिय होने लगा था। उन्हें बाल के पीछे भागने, उसे दूर तक मारने की कोशिश में आउट होने, बल्लेबाजों को आड़ी-तिरछी बालिंग कर छकाने और फिर से अपनी बैटिंग का इंतजार करने में खूब मजा आता था।

कभी-कभी वह स्कूल से आते समय मुमताज के घर चला जाया करता था। मुमताज की अम्मी प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरती थी। कोई फल हुआ तो ठीक वरना एक कटोरे में दालमोठ डालकर उसके सामने रख देती थी। प्रायः पान खाते रहने वाली और सलवार-कुर्ते में सुंदर दिखने वाली मुमताज की अम्मी उसे अपनी ईजा जैसी ही लगी थी। अभी वह दालमोठ खा ही रहा होता कि मुमताज उसे अपने खेलने की चीजें और

किताबें दिखाने लगता था। चारपाई में बैठी हुई उसकी अम्मी कपड़े सीने, दाल साफ करने के जैसे कामो में लगी रहती थी।

इस तरह साथ खेलते-कूदते, पढ़ते-लिखते-समझते गाँव से कक्षा दस की पढ़ाई पूरी करके वे शहर में पहुँचे। शहर का कालेज तो पसंद आया ही, कालेज से लगा पुस्तकालय भी उन्हें खूब भाया। पहली बार उन्होंने इतनी बड़ी संख्या में भिन्न-भिन्न प्रकार की पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ देखी। कालेज से छूटते ही वे पुस्तकालय पहुँच जाते, वहाँ अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर शाम को घर पहुँचते। दोनों को पढ़ने-लिखने में इतनी रूचि लेते हुए देखकर उनके घर वालों को अच्छा लग रहा था। उन्हें लगता, दोनों इस तरह पढ़ते रहे तो जरूर एक दिन बड़ा आदमी बनकर उनका नाम रोशन करेंगे।

उनके लिए वे ढेर सारी कल्पना, सपनों और जिज्ञासा के दिन थे। जहाँ अधिकांश लड़के अपने भविष्य की चिंता में खोये हुए किताबों को रटने में लगे रहते थे। वे दोनों साहित्य, सिनेमा तथा सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी के माध्यम से अपने समय तथा उसके सवालों को समझने में लगे हुए थे। आस-पास का विशामतापूर्ण जीवन उन्हें कचोटने लगा था।

बहुत जल्दी रमेश के पिता की समझ में आ गया कि लड़का सीधे रास्ते में जाने के बजाए दाएँ-बाएँ झाँकने में ज्यादा ध्यान दे रहा है। एक दिन उन्होंने उस से साफ-साफ कह दिया - 'जिंदगी में कुछ करना है तो अँग्रेजी, विज्ञान और गणित पढ़ो। इन फिजूल की किताबों से दिमाग खराब करने के अलावा कुछ नहीं मिलेगा! पढ़-लिखकर कुछ बन-बना जाओ तब इनको पढ़ना!'

'हमारे सवालों के जवाब तो इन्हीं किताबों में हैं। असली पढ़ाई तो यही है!'

'तो सवालों के जवाब खोज लो... बाद में घास छिलना!' कहकर पिताजी पैर पटकते हुए चले गए थे।

रमेश जब देश के लिए मर-मिटे शहीदों के जीवन चरित को पढ़ता तो उनकी तरह कुछ कर गुजरने की उसकी भी इच्छा होती थी। उसका मन युद्ध के उन मैदानों को देखने को करता, जहाँ इतिहास की अमर लड़ाइयाँ लड़ी गई थी। कभी राणा प्रताप के साथ हल्दी घाटी में विचरते हुए वह भी घास की रोटियाँ खाता और कभी टीपू की फौज में सम्मिलित होकर अँग्रेजों से लोहा लेता। आँख लगते ही उसकी यात्राएँ आरंभ हो जाती थी। कभी वह सहारा के रेगिस्तान तो कभी उत्तरी ध्रुव के बर्फीले मैदानों में पहुँच

जाता। कभी बुद्ध के सामने बैठकर उनसे जीवन की विडंबना और अंतर्विरोधों पर चर्चा करता।

मुमताज अपने पिता का हाथ बँटाने लगा था। समय काटने के लिए गाँव के लोग उनकी दुकान में बैठा करते थे। लोगों के दुख-सुख में उनकी भागीदारी होने लगी थी। अपनी बेहतरीन कारीगरी के कारण आस-पास के गाँव से भी काम आने लगा था। अब वे एक तरह से वहीं के हो गए थे। फिर भी कुछ था, जो मुमताज को कचोटता रहता था। बाहरी और अलग होने का एहसास पीछा नहीं छोड़ता था। कुछ लोग मजाक में बहुत कुछ कह जाते थे। मुमताज के अब्बा या तो उन बातों पर कान नहीं देते थे या हँसकर टाल जाया करते थे। मुमताज बताता था, उसके अब्बा कहते हैं, फिजूल की बातों पर कान देने से परेशानी के अलावा कुछ नहीं मिलता। पर कोई कान के पास आकर सुनाता रहे तब क्या किया जाए? बिगड़ैल लड़के 'कटुवा' कहकर उसे चिढ़ाने की कोशिश करते तो बुरा रमेश को लगता था।

'तू सब समझता है... इन सब बातों से ऊपर भी है... लेकिन लोग हमारे साथ सहजता से पेश क्यों नहीं आते... हमें पराया... और बाहरी क्यों समझते हैं?' एक बार मुमताज ने उस से पूछा था।

'इसमें तुम्हारी कोई कमी नहीं है। वह इस तरह से अपने छोटेपन को संतुष्ट करते हैं। आज वो धर्म की बात कर रहे हैं, कल को जात की करेंगे, परसों को जात के अंदर जात खोजेंगे, ऐसे लोग अंततः सिर्फ अपने बारे में सोचते हैं। तू उनकी ओर ध्यान मत दिया कर!'

'आखिर कब तक ध्यान न दूँ? मैं भी तो इनसान हूँ!' उसने खीझकर कहा था।

'जब तक दुनिया मानवीय नहीं हो जाती, तब तक यह हम सब को झेलना होगा। तेरी जगह अगर मैं होता तो मेरे साथ भी यही होता। पता नहीं क्यों आदमी दूसरे की अलग पहचान को बर्दाश्त नहीं कर पाता। चाहता है, दूसरा भी उसके जैसा हो जाए। भला ऐसा कैसे हो सकता है?'

'तू ठीक कह रहा है। ऐसे लोग सभी धर्मों में हैं। हम अपने को पहले मनुष्य मानते हैं लेकिन लोग चाहते हैं, हम हिंदू-मुसलमान बने रहें!' उसने लंबा निःश्वास छोड़ते हुए कहा।

'लोगों को छोड़ हम तो अपने को पहले और आखिर में मनुष्य मानते हैं ना!' उसने बात को समाप्त करने की गरज से कहा।

'बात करना कितना अच्छा होता है। एक-दूसरे की सोच का पता चल जाता है। जो लोग आपस में बात नहीं कर पाते वो कितने दुर्भाग्यशाली होते हैं!' मुमताज ने बात को अंतिम रूप दिया था।

दोनों की सामाजिक गतिविधियाँ का दायरा काफी बढ़ गया था। शहर में होने वाले बौद्धिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उनको अपना होना जरूरी लगने लगा था। पढ़ाई में तीसमरखाँसी बनना अब उनका उद्देश्य नहीं रह गया था। जीवन के कई अहम् सवाल उससे नदारद थे। समझ में आ रहा था कि इससे नौकरी पाने के अलावा और कुछ नहीं हो सकता। उनको जीवन शहर की सड़कों, गलियों से लेकर गाँव-खेतों तक बिखरा हुआ दिखाई देता था।

इसी दौरान पुस्तकालय के बाहर किसी विषय पर बहस के दौरान उनकी मुलाकात सुरेशजी से हुई थी। सुरेशजी ने उनसे बातचीत में काफी रूचि दिखाई। दोनों की काफी प्रशंसा की। उनका कहना था, 'देश - समाज के लिए सोचने वाले युवा अब नहीं रहे। एक हमारी पीढ़ी थी, जिसने अपनी जिंदगी से ज्यादा महत्व राष्ट्र को दिया। अब तो जिसे देखो वो सिर्फ अपने बारे में सोच रहा है!' उन्होंने उनको साथ बैठकर बातचीत का आमंत्रण दिया।

दोनों ज्यादा इंतजार किए बिना, उनके द्वारा बताई जगह पर पहुँच गए थे। सुरेशजी ने सनातन धर्म, अखंड भारत से शुरू कर राष्ट्रवाद पर ऐसा अविराम वक्तव्य दिया कि दोनों देशभक्ति के भाव से ओतप्रोत हो गए। उन्हें लग रहा था, इसी समय देश के लिए कुछ कर गुजरना होगा, वरना वे कभी अपने को माफ नहीं कर पाएँगे। इस तरह उनका सुरेशजी के पास आना-जाना होने लगा। उन्होंने उन्हें पढ़ने को साहित्य दिया। इसी दौरान उन्हें पता चला सुरेशजी एक संगठन के पूर्ण कालिक कार्यकर्ता हैं। उनकी भाषा और बोलने का अंदाज उन्हें खूब पसंद आता था। मुसलमान होते हुए देश, समाज तथा राष्ट्र पर रूचि लेने के कारण उनको मुमताज से विषेश उम्मीद थी।

'मुस्लिमों की सब से बड़ी त्रासदी शिक्षा का अभाव है। जिसके कारण उनकी सोच सकारात्मक नहीं बन पाती। मुल्ला-मौलवी उनमें भय, परायेपन तथा असुरक्षा का एहसास भर देते हैं। फलस्वरूप मुसलमान अपने को अलग मानते हुए अलगाव के रास्ते में बढ़ जाता है। उसे यह देश यहाँ की मिट्टी अपनी नहीं लगती!' वे प्रायः मुस्लिम समाज को लेकर चिंतित रहते थे।

'ऐसा नहीं है। यह संकट सभी धर्मों को मानने वाले गरीब लोगों के साथ है। उनको बरगलाने और उनका शोषण करने वालों में धर्म के ठेकेदार ही नहीं, उनके अपने रिश्तेदार, दुकानदार, सरकारी मुलाजिम से लेकर, हमारे नेता तक सम्मिलित हैं। मेरा गाँव जो इस देश में है, मुझे किसी अन्य इनसान की तरह प्यारा है। मुझे हर समय अपने गाँव और वहाँ बिताए हुए बचपन की याद आती है।'

'मित्र, आपकी शिक्षा मुख्यधारा में हुई है, इसलिए!'

'नहीं, मेरी माँ जो अनपढ़ है, उसे भी अपनी मिट्टी से प्यार है। मदरसे में पढ़े मेरे पिता को इस देश से प्यार है तभी रोजी-रोटी के लिए वे यहाँ आ गए!'

सुरेशजी को कोई जवाब नहीं सूझता।

'समस्या जानते हैं क्या है? हम अपने गड्डे को ही पूरी दुनिया मानकर चलते हैं। इनसान अंततः इनसान ही होता है, उसका कोई देश या धर्म हो, फितरत तो सब की एक जैसी होती है।'

'तुमने बिल्कुल सही कहा। इसीलिए हमारे विचारकों ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात की। राष्ट्रीय एकता के लिए यह जरूरी है कि देश में मौजूद अन्य धर्म तथा समुदाय के लोग बहुसंख्यकों की संस्कृति में घुलमिल जाएँ ताकि कोई भेदभाव ही नहीं रहे!'

'नहीं, ऐसा आप समरसता के लिए नहीं कहते। आप चाहते हैं कि आपके अलावा और किसी की कोई अलग पहचान ही न रहे। आप की सोच औरंगजेब और मोहम्मद गोरी जैसों से अलग नहीं है। वे भी दूसरे धर्म के लोगों को मार-मार कर मुसलमान बना देना चाहते थे।' मुमताज ने लंबी साँस छोड़ते हुए कहा।

'हम लोग अब ये क्यों नहीं समझ लेते हैं कि मुसलमान अब हमारा अपना है। यही उसका देश है। जिन्होंने धर्म के नाम पर अलग देश बनाना था, उन्होंने बना लिया। दुनिया के सामने यह भी साबित हो गया कि केवल धर्म की बात कर के न तो आदमी एक हो सकता है और न ही अपने लोगों का भला कर सकता है।' रमेश ने कहा।

'मित्र, अभी तुम बहुत छोटे हो। जवानी के जोश में पहले हम भी ऐसा ही सोचा करते थे। आपको पता है, पाकिस्तान क्या चाहता है? वह इस देश को हजार टुकड़ों में बाँट देना चाहता है। हमारी समृद्धि उसे फूटे आँख नहीं सुहाती है।' उन्होंने अपने तरकश से दूसरा तीर निकाला।

'पहली बात तो समृद्धि के बारे में आप को गलतफहमी है। दूसरा, किसी के चाहने से कुछ नहीं होता। यहाँ भी कुछ ऐसे लोग हैं, जो पाकिस्तान को मटियामेट कर देने की बात करते हैं।' उसने कहा।

सुरेशजी को उनका इस तरह जवाब देना पसंद नहीं आया था। वे गुस्सा होकर, बगैर कुछ कहे चले गए थे।

'जो बातें उनके अस्तित्व को खतरे में डाल दें। वे उनको कैसे पसंद आ सकती हैं?' मुमताज ने कहा।

उनके घरों में होने वाली पैसे की चिक-चिक अब उन तक भी पहुँचने लगी थी। पहले स्वर धीमे होते थे और लगता था, पिता लोग कोई रास्ता निकाल लेंगे। लेकिन अब उनकी बातों से लगता था, गाड़ी फँस चुकी है। बात साफ थी, घर की चिंताओं में अब वे उनकी भागीदारी चाहते थे। वे गलत नहीं थे। उन्होंने उन्हें कितनी मेहनत से पाला था। वे चाहते थे कि अब वो लोग भी आटे-दाल का भाव समझ लें। घर की जरूरतें बढ़ रही थी। लेकिन उनके घरों में उतना पैसा नहीं था। खेती और गाँव की बढ़ईगिरी से कोई कितना कमा सकता है? वैसे भी दोनों जहाँ जाते थे, रूपये की महिमा के आगे खुद को बेबस सा पाते थे। उधर दोनों की बहनें ताड़ के पेड़ की तरह बढ़ती चली जा रही थी। घर वालों की बातों में अब प्रायः उनकी शादी का जिक्र होता था। सब कुछ जानते-समझते हुए घर वालों के आगे हाथ फैलाना अब उन्हें बुरा लगने लगा था। उन्होंने तय किया कि अब पढ़ाई के साथ रोजगार भी करना होगा।

'बहुत दिनों से मुलाकात नही हुई। कहाँ रहते हो?' एक दिन रोजगार की तलाश में भटकते हुए उन्हें सुरेशजी ने पकड़ लिया।

इस से पहले कि वे कुछ कहते वे दोनों को चाय की दुकान के अंदर ले गए। चाय का ऑर्डर देकर वे कहने लगे - 'यही उम्र है, राष्ट्र के लिए कुछ करने की... मिट्टी के कर्ज से उऋण होने की... आप जैसे सोचने-विचारने वाले लोग, अगर आगे नहीं आएँगे तो कौन आएगा!' वे जोश में थे।

'बात सही है, लेकिन राष्ट्र का दायित्व अपने कंधों में लेने से पहले हम परिवार नाम की इकाई के प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाह रहे हैं। यहाँ से तसल्ली हो जाए तो आगे बढ़ा जाए! आप हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं!'

'हमारे पास आ जाओ... संगठन को सहयोग करने वालों में कैसे-कैसे उद्योगपति और पूँजीपति हैं, काम तो बहुत छोटी चीज है। बहुत आगे बढ़ जाओगे!'

'लेकिन हम काम और अपनी आजादी के बीच में कोई घालमेल नहीं करना चाहते।' रमेश ने कहा था।

'भई, हम तो आप को सहयोग करने की सोच रहे थे। अब आप इसे गुलामी समझ रहे हो तो हम क्या कह सकते हैं!' कहकर वे फिर से उन्हें छोड़कर चले गए। वे उनकी बेरुखी को देखते रह गए।

काम तो था, पर यहाँ भी किसी की गवाही चाहिए थी। सेठों का कहना था, कल को रूपये-पैसे या सामान लेकर चंपत हो गए तो वे किस को पकड़ेंगे। बात सही थी। गवाह को ढूँढ़ना उनके लिए कठिन नहीं था। अब एक कमरा लेकर दोनों शहर में रहने लगे। दिन का चक्का अब तेजी से घूमकर खत्म होने लगा। लाईब्रेरी तथा गोष्ठियों में जाना अब संभव नहीं रहा था। बहुत जल्दी उनको लगने लगा कि उन्होंने अपनी जिंदगी को काफी तंग कर लिया है। लेकिन और कोई रास्ता भी नहीं था। फिर भी वे खुश थे क्योंकि अपना खर्चा खुद उठाने लगे थे।

तभी अरविंद से मुलाकात हुई थी। चेहरे पर बेतरतीब दाढ़ी, कंधे पर लटके थैले में पर्चे तथा साहित्य और किसी भी विशय पर बहस को हर समय तैयार, अरविंद उन्हें काफी रोचक लगा था। बड़ी बात यह थी कि वह आदमी की पहचान उसके धर्म से नहीं करता था। वह शोषण, अन्याय के खिलाफ काफी आक्रामक था और उसकी चिंता उसके पूरे व्यक्तित्व से झलकती थी। उसने ही उनसे कहा था कि तुम्हारे इस भावुकता भरे आदर्शवाद से न तो घर की जरूरते पूरी हो पाएँगी न तुमको ही कुछ करने को समय मिल पाएगा। बल्कि तुम दोनों इस शोषण तंत्र की चक्की में पिसकर रह जाओगे। 'कोई ट्यूशन वगैरा पढ़ा लो!'

'एक साथ इतने ट्यूशन कहाँ से मिल पाएँगे और एक-दो ट्यूशन से हमारा क्या होगा?'

'सवाल तुम्हारे घरों के संकट का ही नहीं है। सवाल देश के सभी घरों का है। क्या तुम्हारा सेठ तुम्हें इतना मेहनताना देता है कि तुम लोग अपने परिवार का खर्चा उठा सको!'

'लेकिन अभी तो हमने शुरूआत की है। हमारी मेहनत देखकर आगे जाकर तनखा बढ़ाएगा। अभी जो देता है उस से हमारा खर्च निकल जाता है। इतना ही सुकून है कि अब हम घर वालों के ऊपर बोझ नहीं हैं!'

'तुम कितनी मेहनत क्यों न कर लो वह कभी तुम्हें इतनी तनखा नहीं देगा कि उसकी तरह तुम्हारा जीवन भी बेहतर हो सके। भले ही सभ्य शब्दों में वह अपने कमाने के तरीके को व्यापार कहता है, पर उसकी कुशलता इस बात में है कि वह कितने अच्छे से लोगों को लूट लेता है। लूट ग्राहकों की जेब की। लूट अपने साथ काम कर रहे लोगों के श्रम की। हमारे देश की व्यवस्था इस लूट का समर्थन करती है।'

'तो क्या हमारे देश की आजादी का कोई मतलब नहीं। हमें यह भी तो मानना पड़ेगा कि हम गरीब देश हैं। विकास की प्रक्रिया में हैं। सभी के जीवन में उजाला आने में समय लगेगा।' रमेश ने कहा।

'पहले तो हमें अच्छे से समझना होगा कि आजाद कौन हुआ? कम से कम इस देश का आम आदमी तो आजाद नहीं हुआ। उसका जीवन पहले से बदतर हो गया है। हम गरीब देश नहीं हैं। हमारी नीतियाँ गरीब हैं। विकास एक भ्रम है, जिसके जरिए लोगों को लालची, भोगी और कामी बनाया जा रहा है। पहले उपभोग की इतनी चीजें नहीं थी तो गाँव का जीवन अपने आप में मुकम्मल था। अब गाँव का जीवन अभिशाप में बदल गया है। जो वहाँ रह गए हैं उनको लगता है, वे असफल लोग हैं। सफल वे हैं, जिन्होंने पैसा कमाया है, फिर वह कैसे भी क्यों न कमाया हो।'

'यह सब सुधर कैसे सकता है?'

'इसका हमारे पास कोई रेडीमेड जवाब नहीं है। यह तो हम सब लोगों को सोचना है। वैसे तुमको क्या लगता है?' उसने मुमताज से पूछा था।

'मुझको लगता है, अगर सत्ता में बैठे लोग संवेदनशील हों, सबका भला चाहते हों तो सब कुछ ठीक हो सकता है।'

'सत्ता में बैठे लोग संवेदनशील भी हैं और सबका भला भी चाहते हैं, फिर भी हालात क्यों नहीं बदल पा रहे हैं।' अरविंदने तुरंत प्रश्न किया।

'क्योंकि ऐसे कुछ ही लोग हैं। बहुत से लोग ऐसे हैं जो पहले अपने जीवन को बदल लेना चाहते हैं!'

अरविंद यहाँ पर तक तो उन से सहमत था, यहाँ के बाद वह उनसे असहमत था। उसे लगता था, व्यवस्था का चरित्र अमानवीय है, इसलिए वह उसको चलाने वाले लोगों को भी अमानवीय बना देती है। मुमताज का कहना था कि हमारे देश में मौजूद व्यवस्था से जनपक्षधर तथा मानवीय व्यवस्था और कौन सी होगी? अगर इस शासन व्यवस्था को चलाने वाले लोगों पर भरोसा नहीं किया जा सकता तो किसी और शासन व्यवस्था को चलाने वाले भी तो लोग ही होंगे, उन पर कैसे भरोसा किया जा सकता है?

अरविंद का कहना था कि मानवीयता का मुखौटा लगाए हुए इस व्यवस्था में शेर, भेड़िये, हिरन तथा खरगोश को प्रतिस्पर्धा की छूट मिली हुई है। 'तुम बताओ इस प्रतिस्पर्धा में जीतेगा कौन? किसका राज कायम होगा?'

'स्पष्ट है, शेर, भेड़िए ही जीतेंगे! लेकिन क्या आदमी की तुलना जानवरों से की जा सकती है? हम लोग इनसान हैं... जानवर नहीं!' मुमताज ने जवाब में कहा था।

डसके इस जवाब से अरविंद नाराज हो गया था। 'इतने सब के बाद भी अगर तुम लोग मानवीयता के मुखौटे पर चल रहे, जंगलराज को नहीं पहचानना चाहते हो तो मैं क्या कर सकता हूँ?'

जोरदार बहसों, सहमतियों-असहमतियों तथा प्रश्नों के बावजूद अरविंद और उसके संगठन का साथ उन्हें अच्छा लग रहा था। वे लोग चीजों को भावना के बजाए तर्क की कसौटी पर कसते थे। इसलिए उनके साथ बातचीत में एक गरिमा और गहराई होती थी। वे तमाम विषयों पर पर्चे छपवाकर लोगों के बीच जाते थे। लोगों से बहसें होती थी। बहुत कुछ नया जानने तथा सीखने को मिल रहा था। कई नए लोगों से मिलना हो रहा था। इससे उन्हें अपना दायरा बढ़ता हुआ महसूस होता था।

घर के लिए खाने-पीने की कोई चीज लेकर आने और अपनी माँओं के हाथों पर कुछ रूपये रखने पर उन्हें लगता, मानो अब वे सचमुच में बड़े हो गए हैं। जबकि उनकी नजरों में दोनों कमजोर होते जा रहे थे। घर पहुँचते ही वे उनके सामने खान-पान को लेकर कई तरह के सवाल खड़े कर दिया करती थी। इस दौरान मुमताज ने उसे बताया था कि उसके पिता का काम हल्का चल रहा है। लोग काम करवाकर पैसे नहीं दे रहे थे। फलस्वरूप राशन के दुकानदारों से लेकर आरा मशीन वालों तक काफी देनदारी हो चुकी थी। उसने उसे सांत्वना देते हुए कहा था कि कुछ दिनों में सब ठीक हो जाएगा।

तभी उनके साथ ही सब के सामने, वह समय आया चुका था, जब सत्ता की बागडोर छिनने के लिए देश में एक नया प्रयोग शुरू हुआ था। एक पार्टी के नेता दिग्विजय

अभियान के लिए रथ में सवार होकर निकल चुके थे। वे देश की बहुसंख्यक जनता को समझा रहे थे कि उनका कल्याण अब उनके बताए रास्ते से ही हो सकता है। वे लोगों को उद्वेलित करने में सफल रहे। 'मदिर वहीं बनाएगे' का नारा हर ओर गूँज रहा था। फिर छह दिसंबर का दिन आया और जो हुआ उसके बाद देश में जगह-जगह दंगे भड़क उठे।

दोनों तुरंत गाँव की ओर चल दिए। वहाँ भी लोग उत्तेजित थे। अजीबोगरीब बातें हो रही थी। पर शहरों का जैसा माहौल नहीं था। मुमताज के कहने पर भी कि चिंता की कोई बात नहीं है, पिता को मनाकर उसने मुमताज और उसके घर वालों को अपने वहाँ ठहरा दिया। हालात ठीक होने पर जब गाँव के लोगों को असलियत का पता चला तो कुछ को उनका कदम ठीक लगा, कुछ ने उन लोगों को खूब भला-बुरा कहा। उनका कहना था, 'अगर ऐसे ही कोई हिंदू-मुसलमानों की बस्ती में अकेला रहता तो वहाँ के लोग उसका साथ देते। जब कश्मीर में हिंदुओं को मारा-काटा जा रहा है, उनको उनके घर तथा जमीन से बेदखल किया जा रहा है तो कोई हिंदू किसी मुसलमान की रक्षा क्यों करे।'

इस बीच जब माहौल थोड़ा शांत हुआ तो एक दिन अपने कुछ साथियों के साथ अरविंद उनसे मिलने पहुँच गया। मुमताज के हाल-चाल पूछने के बाद वह सीधे मुद्दे पर आ गया।

'साथी, फासिज्म पर परचा आ गया है। यही समय है, जब हम लोगों को समझा सकते हैं कि जब देश और समाज में प्रगतिशील ताकतें कमजोर होती हैं तो धर्म के नाम पर लोगों को बरगालाने वाले इसका फायदा उठाने को आगे आ जाते हैं!' उसने चहकते हुए कहा।

'इसमें चहकने की क्या बात है**?**'

'तुम समझ नहीं रहे हो हमारे लिए यह कितना बढ़िया मौका है लोगों के बीच जाने का। उन्हें बताने का कि पूँजीपति और राजनीतिक पार्टियाँ कैसे लोगों को मंदिर-मस्जिद में उलझाकर अपनी रोटियाँ सेंकना चाहती हैं।'

'आपको पता है। इस समय लोगों पर क्या बीत रही है? कितने घर बर्बाद हो गए हैं। लोग कितनी दहशत में जी रहे हैं। वर्षों के अपनेपन की जगह भय और अविश्वास का माहौल बन गया है।'

'मुमताज आप भावुक हो रहे हो। इस तरह की चीजें मनुष्य जीवन का अनिवार्य अंग होती है। धार्मिक, जातीय तथा पहचान संबंधी सामंती मूल्य तमाम तरह के द्वंद्वो का रूप लेकर एक दिन फूट पड़ते हैं। यह अविकसित पिछड़े समाजों की निषानी है। हमें इसे दृष्टा की तरह देखना होगा, भोक्ता की तरह नहीं!'

'आप देख सकते हो, साथी! क्योंकि आप पर कोई संकट नहीं है। जैसा आप सोचेंगे दुनिया वैसी नहीं हो जाने वाली। दुनिया गणित के सूत्र से नहीं अपनी चाल से चलती है।'

'साथी, मुझे आपके विचारों में विचलन दिखाई दे रहा है। आप गांधीवादियों की तरह बात कर रहे हैं। गांधीवाद तो गांधी के जीवित रहते ही फेल हो गया था!'

'आखिर वादी होने की जरूरत ही क्या है? वादी होना ही क्या शोषण तथा अन्याय का कारण नहीं बन जाता? क्या इतने सालों का अनुभव हमें यह नहीं बताता कि जिसने जो भी अच्छा कहा है, हमें उससे ले लेना चाहिए? क्या हमें समन्वय का रास्ता नहीं अपनाना चाहिए?'

'आप को क्या हो गया, आप कैसी बात कर रहे हो? समन्वय करोगे, कुछ नहीं हो पाएगा! कोई चीज खड़ी नहीं हो पाएगी। किसी लड़ाई को खत्म करना हो तो उसे समन्वय के रास्ते पर आगे बढ़ा दो!'

'इसका मतलब आपको लोगों की आकांक्षाओं से मतलब नहीं है। आप लोगों के नाम पर अपनी आकांक्षाओं के लिए संघर्ष कर रहे हो!' उसने कहा तो अरविंद ने सिर पकड़ लिया और कुछ देर बैठकर वह चला गया।

'ये लोग चाहते क्या हैं?'

'इन सभी को सैनिक चाहिए। सैनिक जो इनकी भाषा बोलते हों, जो सवाल न करते हों, सोचते न हों!' मुमताज ने उदास होकर कहा।

'लेकिन अगर अन्याय, शोषण और गैर-बराबरी है तो उसके खिलाफ संघर्ष भी तो करना पड़ेगा, मुमताज!' रमेश ने कहा था।

'हमें सिर्फ एक जीवन मिला है। यह जीवन हमें अपनी सोच और आजादी के साथ जीना है। अभी का सब से बड़ा काम तो लोगों को उस धरातल पर लाना है, जहाँ पर

जाकर उन्हें लगे कि सब से पहले हम इनसान हैं। हाँ, अगर यह साबित हो जाता है कि हमें मिली आजादी झूठी है तो एक और आजादी के लिए संघर्ष में कूद पड़ेंगे!'

'इतने इंतजार का समय अब कहाँ है? तुझे यह नहीं लगता यह काम हमें एक साथ करना होगा!'

'हाँ, मगर लोकतांत्रिक तरीके से। हाँकते हुए नहीं!' उसने दो टूक उत्तर दिया था।

माहौल शांत होने के बाद, जब वे शहर लौटे तो उन्हें लोग पहले से चुस्त और तरोताजा लग रहे थे। शायद ऐसा इसलिए था क्योंकि लोग वर्षों से अपने भीतर जमा गुस्से और नफरत को बाहर निकाल चुके थे। बाजारों में पहले जैसी चहल-पहल शुरू हो चुकी थी। लोगों के पास एक-दूसरे को सुनाने को काफी कुछ था। एहतियात के तौर पर पुलिस गश्त में थी। कई दिनों के कर्फ्यू और बंदिष ने लोगों की सहजता छीन ली थी, इसलिए अब वे शांति चाहते थे।

मुमताज के साथ वाले अब उस पर छिंटाकशी करने लगे थे। उस से उन प्रश्नों के जवाब चाहे जाते थे, जिनका जवाब देने की जरूरत वह नहीं समझता था। कालेज में भी पहले जैसी सहजता नहीं रही थी। रमेश ने उस से कहा, कुछ समय की बात है, फिर सब ठीक हो जाएगा। मुमताज उससे सहमत था, पर वह अनमना रहने लगा था। कुछ सोचता रहता। कुछ कहो तो ऐसे चौंकता था गोया शरीर को वहीं पर छोड़कर किसी और दुनिया में चला गया हो। धीरे-धीरे उसे लगने लगा था, अब वह पहले की तरह अपनी बातें उसके साथ नहीं बाँटता है।

एक दिन मुमताज उसे बगैर बताए गाँव को चला गया। पड़ोस वालों से कह गया, घर से बुलावा आया है। रमेश की समझ में कुछ नहीं आया। अचानक ऐसी क्या बात हो गई? घर जाना तो सप्ताहांत में होता था। फिर सोचा, होगी कोई बात, जो वह उसके साथ बाँटना नहीं चाहता होगा? उसे बताने लायक बात होती तो जरूर बताता!
शनिवार की शाम काम से जल्दी छुट्टी लेकर वह घर की ओर चल दिया। सब से पहले मुमताज के घर पहुँचा। वहाँ ताला लटका था। पड़ोशियों से पता चला किसी को कुछ बताए बगैर पूरा परिवार गाँव से चला गया है। किसी ने उन्हें देखा तक नहीं था।

वह उनकी दुकान की ओर दौड़ा। दरवाजा खुला था। अंदर मक्का-मदीना का एक कलैंडर और बची हुई लकड़ी के टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए थे। उसे देखकर आस-पास के लोग दुकान की ओर आ गए।

'उसका लड़का तेरा जिगरी दोस्त था। तुझे पता होगा, उनके बारे में!'

'नहीं, मुझे कुछ पता नहीं!' वह खुद सदमे में था।

'दे गए धोखा... ऐसे ही होते हैं ये लोग... कश्मीर में साथ रहने वालों के सगे नहीं हुए... तेरे क्या होते?'

'होगी उनकी भी कोई मजबूरी... वे गलत नहीं थे!' उसने साफ-साफ कहा।

गाँव में अपने-अपने नुकसान गिनाने वाले कई लोग थे। कोई कहता शब्बीर उसकी लकड़ी उड़ा ले गया तो कोई अपने पैसों का जिक्र करता। मगर कोई यह नहीं कहता था कि उसने शब्बीर को कितना रूपया देना था?

समय बीतता गया, धीरे-धीरे उसका गाँव में आना कम होने लगा। लोगों की बातों में भी मुमताज और उसके परिवार का जिक्र अब नहीं होता था। लेकिन वह अपने दिल और दिमाग का क्या करे, जहाँ आज भी मुमताज के साथ बिताये पलों, उसके साथ की गई बहसों और उसकी अम्मी के हाथ से बने खाने की महक तरोताजा है। हर बार यह सवाल उसे परेशान करता कि वह उस से मिले तथा बगैर कुछ बताए क्यों चला गया! पता नहीं अब वह और उसका परिवार... कहाँ तथा किस हाल में होगा? फिर वह मन ही मन कामना करता, वह जहाँ भी होगा ठीक ही होगा! इसके साथ ही वह सोचता,, क्या वह भी उसे इतनी ही शिद्दत से याद करता होगा? अगर करता होगा तो कभी मिलने जरूर आएगा!